भगवान् गौतम बुद्ध

बाल-विनोद-वाटिका का बीसवाँ पुष्प

भगवान् गौतम बुद्ध

लेखक

स्व० पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा

(संपादक हिंदू-पंच)

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

प्रकाशक और विक्रेता

लखनऊ

सादी ।-)] सं० १६८६ वि० [रंगीन जिल्द ।।)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

दो शब्द

अपने देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुरुषों की जीवनियाँ पढ़ना प्रत्येक बालक और युवा के लिये परम आवश्यक है। इसीलिये, मेरा जहाँ तक ख़याल है, इस तरह की छोटी-छोटी जीवनियों को सीधी-सादी भाषा में लिखकर बालकों और युवाओं के हाथ में देना प्रत्येक लेखक का कर्तव्य होना चाहिए। ऐसी पुस्तकों की भाषा बोलचाल की और जल्द समझ में आने योग्य होनी चाहिए। इसीलिये मैंने यह छोटी-सी पुस्तक लिखी है, और मुझे पूरी आशा है कि जिस उद्देश्य से यह लिखी गई है, वह पूरा होगा। इसे लिखने में बाबू शशिभूषण सेन की पुस्तक से भी थोड़ी-बहुत सहायता मिली है, इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

ईश्वरीप्रसाद शर्मा

सूची

भगवान् गौतम बुद्ध

पहला अध्याय

सिद्धार्थ का जन्म

बालको ! तुमने लड़कपन से आज तक न-जाने कितनी बार गौतम बुद्ध का नाम सुना होगा। यह भी सुना होगा कि हिंदुओं में जो भगवान् के दस अवतार माने गए हैं, उनमें बुद्ध नवें अवतार थे। उनके जीवन की पूरी कहानी हम तुम्हें सुनाना चाहते हैं, जिसमें तुम उनका पूरा-पूरा हाल जान जाओ। अपने देश के महात्माओं का जीवन-चरित पढ़ना, सुनना और औरों को सुनाना बहुत ही लाभदायक होता है। इससे हमें मालूम हो जाता है कि हमारे देश में कैसे-कैसे लोग हो गए हैं और किन-किन गुणों के कारण उनके जीवन इतने ऊँचे दर्जे के हो सके थे। साथ ही हमारे मन में यह लालसा भी उत्पन्न होती है कि हम भी अपने जीवन को उन्हीं के समान ऊँचा बनावें।

अयोध्या के राजा दशरथ और उनके पुत्र ईश्वर के अवतार रामचंद्र का नाम भला किस हिंदू से छिपा है ?

आज से दो हज़ार वर्ष पहले उसी वंश के राजा शुद्धोदन हिमालय की तराई में अपने पिता के बसाए हुए 'कपिल-वास्तु'-नामक नए नगर में राज्य करते थे। राजा शुद्धोदन के पिता ने किस तरह अयोध्या से आकर इस नगर को बसाया था, उसकी बड़ी लंबी-चौड़ी कहानी है। हम तुम्हें थोड़े में इतना ही बतला देना चाहते हैं कि अयोध्या के राजवंश में सुजात नाम के एक राजा हुए। उनके पाँच पुत्र और पाँच कन्याएँ थीं। फिर भी उन्होंने एक और स्त्री से विवाह कर लिया। उसके गर्भ से उनके जेंत नाम का एक और पुत्र हुआ। जेंत की माता ने राजा को पूरी तरह अपनी मुट्ठी में कर लिया था; इसलिये जैसे रानी कैकेयी ने दशरथजी से राम के लिये वनवास और अपने पुत्र भरत के लिये राजगद्दी माँग ली थी, वैसे ही इसने भी राजा से प्रतिज्ञा करा ली कि आप अपने पाँचों पुत्रों को राज्य से दूर कर दें और मेरे ही पुत्र को गद्दी पर बिठाएँ। राजा पूरी तरह से रानी के वश में थे, इसलिये उन्होंने विना सोचे-समझे हामी भर दी। इसके बाद उन्होंने अपने पाँचों पुत्रों से यह बात कह सुनाई। उन्होंने सिर झुकाकर पिता की आज्ञा मान ली और राज्य से बाहर चले गए। राजा की इस करनी से प्रजा बड़ी नाराज़ हुई।

बहुत-से लोग इन राजकुमारों के ही साथ हो लिए। वहाँ से चलकर यह सारा दल काशी-कोशल-राज्य में आ पहुँचा। वहाँ के राजा ने इनके मुँह से सारा हाल सुनकर राजा सुजात की बड़ी निंदा की, और इन्हें अपने यहाँ रहने का हुक्म दिया। कुछ दिन बड़े आनंद से बीते। पीछे वहाँ के राजा को यह भय होने लगा कि इतने विदेशियों को अपने यहाँ टिकाने का कहीं उलटा फल न हो, इसलिये उन्होंने उन लोगों से यह राज्य छोड़कर चले जाने को कहा। लाचार, बेचारे फिर वहाँ से भी चल पड़े। वहाँ से लगातार उत्तर की ओर जाते-जाते वे शाकोट-वन में आ पहुँचे, जहाँ कपिल मुनि का आश्रम था। वहाँ सुंदर नदी, पहाड़, जंगल और फल-फूलों से भरे हुए कुंज-वन देख उन लोगों ने वहीं डेरा डाल दिया। धीरे-धीरे उनके दिन फिरने लगे और कुछ समय बाद वही स्थान एक बड़ा ही सुंदर नगर हो गया। महामुनि कपिल के ही नाम पर इस नए नगर का नाम 'कपिलवास्तु' रक्खा गया।

थोड़े ही दिनों में इस नगर की प्रशंसा चारों ओर फैल गई। बड़ी दूर-दूर से लोग बनिज-व्यापार के लिये इस नगर में आने लगे। राजा सुजात को भी अपने पुत्रों का

हाल मालूम हुआ। वे मन-ही-मन बहुत पछताए। सच है, कोई किसी के भाग्य को बना या बिगाड़ नहीं सकता। हर एक मनुष्य अपना भाग्य आप ही बनाता या बिगाड़ता है। राजा सुजात ने तो अपनी ओर से इन्हें भिखमंगा ही बना दिया था; पर ये फिर राजा हो ही गए। भाग्य के लिखे को कौन मेट सकता है?

जो हो, राजा सुजात के पाँचवें पुत्र हस्तिशीर्ष के बेटे सिंहहनु की मृत्यु के बाद उनके पुत्र शुद्धोदन कपिल-वास्तु के राजा हुए। इन्होंने देवदेह के राजा सुभूति की कन्या 'माया' और 'महाप्रजावती' से विवाह किया। चालीस बरस से अधिक अवस्था हो जाने पर भी राजा के कोई संतान नहीं हुई, इसलिये राजा दिन-रात सोच में पड़े रहते थे। सब तरह का सुख रहने पर भी एक पुत्र के विना उनका सारा जीवन दुःखमय हो रहा था।

एक समय की बात है कि वसंत की पूर्णिमा के दिन राजा ने बहुत बड़े उत्सव की तैयारी की, और अपनी रानियों के साथ उत्सव देखने के लिये बग़ीचे में आए। वहाँ नाच-गान देखते-सुनते रात आधी से अधिक बीत गई इसलिये सब लोग वहीं सो रहे, सोते ही बड़ी

रानी मायादेवी ने सपना देखा कि देवता के दूत उन्हें पलँग समेत उठाकर एक पहाड़ पर ले गए, और वहाँ उन्हें नहला-धुलाकर खूब अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े पहनाए। इसके बाद उन लोगों ने उन्हें एक बड़ी मनोहर सेज पर सुलाया। इतने में एक सफ़ेद हाथी सूँड़ में उजला कमल लिए आया और रानी की तीन बार परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद वह उनके पेट में समा गया। यह अचंभा देखते ही रानी की नींद टूट गई। उन्होंने उसी समय राजा से इस सपने का हाल कह सुनाया। सबेरा होते ही राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर इस सपने का फल पूछा। उन लोगों ने गिनती करके बतलाया कि इस स्वप्न का फल बड़ा ही अच्छा है। इससे यही मालूम होता है कि आपकी रानी के शीघ्र ही पुत्र होगा। पर हाँ, एक बात है। यदि वे गृहस्थाश्रम में रह गए, तब तो सब राजाओं के ऊपर चक्रवर्ती होकर ही रहेंगे और यदि संन्यास ले लेंगे, तो सारे संसार के कल्याण करनेवाले होंगे।

यह सुनते ही राजा शुद्धोदन के जी की कली खिल गई। "सूखत धान परा जनु पानी।"* राजा को जो आनंद हुआ, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। रानी को जब अपने

स्वामी के मुँह से ज्योतिषियों की कही हुई बात मालूम हुई, तब वह भी बड़ी आनंदित हुईं। सचमुच थोड़े ही दिन बाद रानी गर्भवती हुईं।

कई महीने बीत गए। दिन-दिन रानी के मुखड़े पर नई ज्योति छिटकने लगी। उन्हें देखने से ठीक मालूम होता था, मानों कोई देवी खड़ी हैं। वह जब जिस वस्तु की इच्छा करतीं, तभी वह वस्तु राजा के हुक्म से उनके पास पहुँचा दी जाती थी। इसी तरह नौ महीने बीत गए। रानी के गर्भ के दिन पूरे हो आए। इसी समय उन्होंने एक दिन अपने स्वामी से पीहर जाने की इच्छा प्रकट की। राजा ने तुरत ही उनको वहाँ भेजने का प्रबंध किया। कपिलवास्तु से देवदह जाने के रास्ते में 'लुंबिनी' नाम का एक बड़ा ही सुंदर बग़ीचा पड़ता था। राजा ने वहाँ पर रानी के ठहरने के लिये सारा प्रबंध करा दिया और यह निश्चय हुआ कि रास्ते में एकाध दिन रानी वहाँ अवश्य ठहरेंगी।

यात्रा की सब तैयारी हो गई। रानी रत्न-जड़ी पालकी पर सवार हो, बहुत-से नौकर-चाकरों के साथ, वहाँ से चल पड़ीं। क्रम से सब लोग लुंबिनी बाग़ में आ पहुँचे। जिसमें रानी को किसी तरह का कष्ट न हो, इसके लिये सब लोग जी-जान से चेष्टा करने लगे।

स्नान और भोजन करने के बाद रानी बगीचे की शोभा देखने के लिये बँगले से बाहर निकलीं। उस समय बगीचे की बड़ी ही सुंदर शोभा बनी हुई थी। जाही, जुही, चंपा, चमेली, गुलाब आदि के फूल खिल-खिलकर आँखों के सामने छबीली छटा छहरा रहे थे। उनकी भीनी-भीनी सुगंध से एकबारगी मन हरा हो जाता था। जगह-जगह पेड़ों पर बैठे हुए रंग-बिरंगे पत्ती सुरीली तानें छेड़ रहे थे। कहीं मृगों के छोटे-छोटे छौने उछल-कूद मचा रहे थे। रानी चारों ओर घूम-घूमकर बगीचे की यह शोभा देखने लगीं। इसी तरह घूमते-फिरते साँझ हो गई। सूरज डूब गए। आसमान में तारे छिटकने लगे। धीरे-धीरे चंद्रमा भी अपनी शीतल किरणें रानी के ऊपर बरसाते हुए प्रकट हुए। इसी समय एकाएक रानी के पेट में दर्द होने लगा। वे दर्द को भूलने के लिये नए-नए पत्तोंवाले एक शाल-वृत्त की शाखा को पकड़ने के लिये हाथ बढ़ाया ही चाहती थीं कि इसी समय उनकी वेदना बहुत बढ़ गई और वे चुपचाप बैठ रहीं। बैठते ही उनके गर्भ से बालक पैदा हुआ।

पलक मारते यह समाचार चारों ओर फैल गया। तुरत ही राजा के पास भी खबर भेजी गई। वे भी चटपट वहाँ

आ पहुँचे। खूब आनंद-उत्सव होने लगे। बधावे बजने लगे। नौबत झरने लगी। पुत्र पाकर राजा के सभी मनोरथ सिद्ध हो गए, इसीलिये उन्होंने उसका नाम रक्खा—'सिद्धार्थ' यही सिद्धार्थ आगे जाकर बुद्ध कहलाए।

दूसरा अध्याय

बुद्ध का बालकपन

लेकिन कभी-कभी आनंद में विषाद भी पैदा हो जाता है। सिद्धार्थ के जन्म के सात दिन बाद ही रानी मायादेवी की मृत्यु हो गई। कहाँ तो पुत्र पैदा होने की बधाइयाँ बज रही थीं, कहाँ रानी के मरने से चारों ओर उदासी छा गई। पूनों की चटकीली चाँदनी में मानों मेघ घिर आए। एकाएक सारे नगर में मानों अँधेरा छा गया। राजा अपनी सब-गुन-आगरी स्त्री को खोकर शोक से बड़े व्याकुल हो गए।

रानी के मरने पर उनकी सौत महाप्रजावती उनके बच्चे को पालने-पोसने लगीं। बच्चे की सेवा के लिये बहुत-सी दाइयाँ रक्खी गईं। सब लोग बच्चे को हर सूरत से सुखी रखने के लिये सदा तैयार रहते थे। पर माता का अभाव भला कौन पूरा कर सकता है?

धीरे-धीरे पिता के लाड़-प्यार से पलते हुए राजकुमार सिद्धार्थ दिन-दिन बड़े होने लगे। जब उनकी अवस्था पाँच वर्ष की हुई, तब उनको खड़िया छुलाई गई। विश्वामित्र नाम के एक पंडित उन्हें वर्णमाला सिखलाने लगे। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" सिद्धार्थ ने बड़ी जल्दी वर्णमाला सीख ली।

बालकपन से ही सिद्धार्थ के चित्त में बड़ी दया थी। वे किसी जीव-जंतु का दुःख देखकर दया से भर जाते थे। एक दिन वे कुछ लड़कों के साथ खेलने गए थे। उस समय आसमान में बहुत-से हंस उड़ते हुए चले जा रहे थे। उनके एक साथी ने, जिसका नाम देवदत्त था, एक हंस को तीर से मारकर नीचे गिरा दिया। उसके शरीर से बहुतेरा लहू निकल पड़ा। सिद्धार्थ से उस पक्षी की यह दुर्दशा देखी नहीं गई। उन्होंने झट उस पक्षी को गोद में उठा लिया, और उसके शरीर से तीर निकालकर उसकी सेवा करने लगे। बेचारे पक्षी के प्राण बच गए। इसी समय देवदत्त ने आकर उस पक्षी पर दावा करना चाहा; पर सिद्धार्थ किसी तरह उस हत्यारे के हाथ में उस हंस को देने के लिये तैयार नहीं हुए। यद्यपि यह बात देखने में मामूली-सी मालूम पड़ती है, तथापि इसी से मालूम पड़ता है

कि लड़कपन से ही उनके मन में कितनी दया भरी हुई थी।

इसी तरह एक दिन वर्षा-ऋतु के आरंभ में जब कपिलवास्तु के सब लोग बड़े आनंद के साथ पहलेपहल खेतों में हल चलाने के लिये आए, तब अपने पिता के साथ-साथ बालक राजकुमार सिद्धार्थ भी वहाँ आए। इस अवसर पर कपिलवास्तु में बड़ा उत्सव होता था, जिसमें राजा-प्रजा सभी लोग भाग लेते थे। राजकुमार ने देखा कि हल चलाने से बहुत-से कीड़-मकोड़ों के रहने का स्थान नष्ट हो गया और वे इधर-उधर भागे फिरते हैं। आसमान में कितने ही पक्षी उन कीट-पतंगों को खाने के लोभ से मँड़रा रहे थे। यह देखकर कुमार को बड़ा दुःख हुआ कि इस प्रकार एक प्राणी दूसरे का प्राण लेने के लिये उतारू हो रहा है। सब आनंद-उत्सव की बातें हवा में उड़ गईं। उनको केवल यही सोच सताने लगा कि क्यों इस तरह एक जीव दूसरे का नाश करता है। जब उनसे नहीं रहा गया, तब उन्होंने अपने पिता से कहकर उत्सव बंद करवा दिया।

सिद्धार्थ के लड़कपन की इन दोनों घटनाओं से मालूम होता है कि वे और-और लड़कों की तरह केवल खेल-कूद, मौज-बहार और आनंद-उत्सव के ही प्रेमी नहीं थे। वे न-

जाने कितनी अच्छी-अच्छी बातें सोचा करते थे। उनकी आँखों से, किसी का दुःख देखते ही, आँसू निकल पड़ते थे। उनके चेहरे पर रात-दिन न-जाने कौन-सी चिंता की छाप पड़ी रहती थी। धीरे-धीरे उनका बालकपन बीत चला। जवानी आ पहुँची; परंतु उनका स्वभाव ज्यों-का-त्यों बना रहा।

राजा शुद्धोदन अपने पुत्र का यह हाल देख-देखकर बड़े सोच में पड़ जाते थे और सदा इसी बात की चेष्टा में रहते थे कि क्या करने से उनके पुत्र का मन हरा रहेगा और वह गहरी चिंता में पड़े रहना छोड़ देगा।

तीसरा अध्याय

सिद्धार्थ का विवाह

बड़ी ही छोटी अवस्था में सिद्धार्थ सब विद्याओं में निपुण हो गए। यह देख राजा ने उन्हें युवराज बनाया और मन-ही-मन सदा यही सोचने लगे कि किसी दिन सिद्धार्थ के ही हाथ में सारे राज्य की बागडोर देकर वे इस झंझट से अलग हो जायँगे; परंतु उन्हें रह-रहकर अपने पुत्र का बैरागीपन देखकर ज्योतिषियों की बात याद आ

जाती थी और उन्हें भय होने लगता था कि कहीं उनका पुत्र किसी दिन घर-द्वार छोड़कर संन्यासी न हो जाय। उस दिन तो उनकी चिंता की कोई सीमा ही न रही, जिस दिन उन्होंने सिद्धार्थ को एक जामुन के पेड़ के नीचे घोर चिंता में पड़े चुपचाप बैठे देखा। उस समय सिद्धार्थ इस तरह चिंता में डूबे हुए थे कि उन्हें अपने तन-बदन की भी सुध नहीं थी। राजा का कलेजा यह देखते ही धक् से हो गया!

इसके बाद राजा अपने बेटे का मन फेरने के लिये बड़ी-बड़ी तरकीबें सोचने लगे। वे सदा इसी बात की चेष्टा करते रहते थे, जिसमें सिद्धार्थ आनंद-प्रमोद में मन लगाएँ; पर सबकी रुचि एक-सी नहीं होती। राजा जो कुछ भी करते, वह सिद्धार्थ के मन ही नहीं भाता था।

कपिलवास्तु नगर के नीचे-नीचे निर्मल जलवाली रोहिणी नदी बहती थी। थोड़ी ही दूर पर पर्वतों के राजा हिमालय की मनमोहिनी छवि दिखाई दे रही थी। राजा ने इसी सुंदर स्थान पर राजकुमार के रहने के लिये एक नया महल तैयार करवाना शुरू किया, जिसके चारों ओर बाग़-बग़ीचे लगाने का भी प्रबंध होने लगा। वह महल नगर की भीड़-भाड़ से बहुत दूर बना था, इसीलिये राजा ने सोचा कि उसमें राज-कुमार का मन खूब लगेगा।

अब के राजा ने सिद्धार्थ का विवाह करने की ठानी। उन्होंने इस विषय में राजकुमार की राय मालूम करनी चाही। कुमार ने इसके लिये एक सप्ताह का समय माँगा। एक ओर तो पिता की इच्छा और दूसरी ओर चित्त का प्रबल वैराग्य—दोनों ने कुमार को बड़ा चंचल कर दिया। वे बड़ी गहरी चिंता में पड़ गए। अंत में सोचते-सोचते उन्होंने विचार किया कि बिना विवाह किए मनुष्य का जीवन अधूरा ही रह जाता है। उसके कितने ही पवित्र भावों का, विवाह किए बिना, विकास नहीं होने पाता। इसलिये विवाह करना ही ठीक है। यही सब सोच-विचार-कर उन्होंने एक सप्ताह के बाद पिता को उत्तर दिया कि मैं विवाह करने के लिये तैयार हूँ।

पुत्र का यह उत्तर पाकर राजा शुद्धोदन बड़े आनंदित हुए। राजा ने उसी समय अपने मंत्री और पुरोहित आदि को राजकुमार के योग्य सब सुंदर लक्षणोंवाली कन्या ढूँढ़ने के लिये भेजा। साथ ही इस बात की डौंड़ी पिटवा दी गई कि राजकुमार के लिये एक सुलक्षण कन्या चाहिए; जो कोई अपनी कन्या का विवाह करना चाहे, वह उसे यहाँ भेज दे; राजकुमार अपनी पसंद से विवाह करेंगे।

एक दिन राजमहल के एक लंबे-चौड़े आँगन में बहुत-

से कलश अशोक के पत्तों से ढके हुए, फूलों से भरकर रक्खे गए। हर एक कलश में तरह-तरह के रत्न रक्खे हुए थे। बहुत-सी बड़े-बड़े घरों की लड़कियों को न्यौता देकर बुलाया गया था। वे तरह-तरह की रंगीन साड़ियाँ पहने, नाना प्रकार के रत्न-जड़े गहनों से देह की शोभा बढ़ाती हुई वहाँ आ पहुँचीं। ठीक समय पर सिद्धार्थ भी वहाँ आ पहुँचे। बारी-बारी से एक-एक लड़की राजकुमार के सामने आती और वे उसे एक-एक कलश उठाकर दे देते थे। इसी तरह कितनी ही कुमारियाँ आईं और कलश लेकर चली गईं। अंत में एक बड़ी ही सुंदरी, शुभ लक्षणोंवाली, भोली-भाली लड़की राजकुमार के पास आई। राजकुमार ने ज्यों ही उसके हाथ पर कलश रक्खा, त्यों ही एकाएक दोनों की आँखें चार हो गईं और कुमार-कुमारी दोनों ही सिहर उठे। कलश लेकर अपनी जगह पर लौटते समय राज-कुमारी ने लाज-भरी चितवन से एक बार कुमार की ओर देखा और फिर सिर नीचा कर लिया। राजकुमार भी उसके जाने पर बड़ी देर तक उसकी ओर देखते रहे। लोग समझ गए कि राजकुमार को यही लड़की पसंद है।

बात राजा शुद्धोदन के कान में पहुँची। उन्होंने उसी समय कुमारी यशोधरा के पिता दंडपाणि के पास अपने

पुरोहित को भेजा। उन्होंने कहा कि राजा शुद्धोदन कितने ही बड़े राजा क्यों न हों; पर जब तक मैं राजकुमार की वीरता की परीक्षा न कर लूँगा, तब तक उनके साथ अपनी कन्या का विवाह नहीं कर सकता। यह बात सुनकर शुद्धो-दन बड़ी चिंता में पड़ गए। उन्होंने सोचा कि मेरा लड़का तो रात-दिन दया-धर्म की चिंता में पड़ा रहता है, वह क्योंकर अपनी वीरता की परीक्षा दे सकेगा ? जो हो, उन्होंने दंडपाणि की बात राजकुमार के कानों तक पहुँचा दी। राजकुमार सिद्धार्थ उसी समय परीक्षा देने को तैयार हो गए। राजा का सोच मिट गया उन्हें आशा की ज्योति दिखाई देने लगी।

उन्होंने दंडपाणि को कहला भेजा कि क्षत्रिय का बेटा अपनी वीरता की परीक्षा देने से कभी पीछे पैर नहीं दे सकता, आप जब चाहें तभी राजकुमार सिद्धार्थ की परीक्षा ले सकते हैं। यह सुनते ही दंडपाणि ने राजकुमार की परीक्षा देखने के लिये बहुत से लोगों को न्यौता देकर बुलवाया। राजा शुद्धोदन भी सिद्धार्थ को लिए हुए उस सभा में आ पहुँचे। उस समय राजकुमार ने तीर-तलवार आदि हथियारों की सफ़ाई दिखाकर सभा के सब लोगों को चकित कर दिया। इसके साथ ही उन्होंने वेद-वेदांग और इतिहास-पुराण

आदि में भी अपनी विद्या का पूरा परिचय दिया । दंडपाणि के जी की सारी दुविधा मिट गई। उन्होंने अपनी कन्या का विवाह कुमार सिद्धार्थ के साथ करना स्वीकार कर लिया ।

अच्छा दिन मुहूर्त देखकर दंडपाणि ने अपनी कन्या यशोधरा का शुभ विवाह कुमार सिद्धार्थ के संग कर दिया । कुमार अपनी इच्छा के अनुसार पत्नी पाकर परम पुलकित हुए । राजा शुद्धोदन अपना घर बसते देख फूले अंग न समाए ।

वर और वधू के कपिलवस्तु में लौट आने पर कई दिनों तक बड़ी धूमधाम और चहल-पहल रही । दिन-रात गाना-बजाना और खाना-खिलाना होता रहा । नगर के लोगों ने अपने-अपने घरों में खूब सजावट, रोशनी और बाजे-गाजे की तैयारी की । बड़े आनंद से आनंद-उछाह के ये कई दिन-बीत गए ।

बूढ़े राजा ने राजकुमार को अपनी पत्नी के साथ नए महल में रहने की आज्ञा दे दी । उनके आनंद का भला क्या पूछना था ? उन्हें जो रात-दिन डर लगा रहता था कि मेरा लड़का कहीं घर-बार छोड़कर संन्यासी न हो जाए, वह डर जाता रहा । अब उनके आनंद का भला क्या ठिकाना था ? वे दिन-रात इस नई जोड़ी के आनंद और सुबीते के लिये

सब प्रकार के प्रबंध करते रहते थे। हर एक ऋतु में उनके रहने का स्थान बदला जाता। हर महल की सजावट नए-नए ढंग से की जाती। मनुष्य को जिस ऋतु में जिन वस्तुओं की इच्छा हुआ करती है, वे सब उन्हें पहले से ही महल में रक्खी मिलती थीं। इसी तरह से बड़े सुख से यह नई जोड़ी अपना जीवन बिताने लगी। कुमार अपने योग्य पत्नी पाकर और यशोधरा सब गुणों से युक्त स्वामी पाकर अपने को धन्य मानती थी।

राजा शुद्धोदन अपने बेटे और बहू को इस तरह सुख से रहते देख अपने भाग्य की बड़ाई करते नहीं अघाते थे। सचमुच इस समय इस नई जोड़ी का पवित्र प्रेम वर्षा-काल की नदी की भाँति पूरी उमंग पर था। मालूम होता था, मानों हंसों की जोड़ी प्रेम से विचर रही है। इसी तरह कितने ही वर्ष बीत गए। दिन जाते क्या देर लगती है? सुख के दिन इसी तरह हवा की चाल से चले जाते हैं। कोई जानता भी नहीं कि इतने दिन किधर से आए और किधर चले गए। पर जो दिन नित्य उँगली पर गिने जाते हैं, वे भी अब आया ही चाहते थे।

एक दिन की बात है, रात बीत चुकी थी। आकाश में पूरब की ओर सफ़ेदी दौड़ रही थी। धीरे-धीरे लोग उठ रहे

थे। इसी समय राजकुमार की निंद्रा भंग करने के लिये गायकों ने प्रभाती गानी शुरू की। उस गाने में न-जानें कौन-सा जादू का-सा असर था कि कुमार की नींद झट टूट गई और वे बड़े ध्यान से उस गीत को सुनने लगे। उस गीत का भाव यही था कि इस संसार में कोई वस्तु सदा रहनेवाली नहीं है। एक दिन सभी को मरना होता है। सभी को रोग और बुढ़ापे का शिकार बनना पड़ता है। जैसे बिजली देखते-देखते आँखों की ओट हो जाती है, वैसे-ही देखते-देखते यह जीवन चला जाता है। इंद्रियों के सुख में डूबे हुए मनुष्य आप ही रोग-शोक मोल लेते हैं। संसार के सारे सुख सपने की संपति के समान हैं। जवानी चार दिनों की चाँदनी है। बुढ़ापा आकर सारे सौंदर्य पर पाला डाल देता है। फिर इस रोग, शोक, बुढ़ापा और मृत्यु आदि से छुटकारा कैसे हो सकता है? जब सभी मृत्यु के वश में हैं, तब क्या एक भी ऐसा नहीं, जिसने मृत्यु को वश में किया हो?

यह गाना सुनते ही राजकुमार का चित्त बड़ा ही चंचल हो उठा। वे सोचने लगे कि सचमुच इस गाने में जो बातें कही गई हैं, वे ठीक हैं। फिर इस जीवन को यों ही झूठे भोग-विलास में गँवाना किसलिये?

चौथा अध्याय

वैराग्य पैदा हुआ

उसी दिन से सिद्धार्थ का मन कुछ-कुछ फिरने लगा। वे रह-रहकर कभी-कभी अनमने से हो रहते थे। लोगों से बोलते-बतराते, घूमते-फिरते, सोते-जागते उनके मन में एक नई तरह की चिंता पैदा हो जाती थी। धीरे-धीरे महल-अटारी, बाग़-बग़ीचा, शोभा-सजावट, गाना-बजाना—सब से उनका जी उचाट होने लगा।

उनका यह बदला हुआ तौर यशोधरा ताड़ गई। भला कौन सती नारी अपने स्वामी की हर एक बात को झट-पट नहीं भाँप लेती? उसे पहले से भी राजकुमार के कुछ-कुछ विरागी होने की बात मालूम थी। अब उनका यह बदला हुआ रंग-ढंग देखकर वह बड़ी चिंता में पड़ गई। तो भी उसने सोचा, कि मेरी ओर से कोई त्रुटि तो नहीं हुई, जिससे स्वामी का जी ऐसा उदास हो रहा है? यही सोचकर उसने एक दिन अवसर देखकर स्वामी से कहा—"नाथ! मैं आज-कल देखती हूँ कि आपका मन किसी काम में नहीं लगता। न तो आप रुचि के साथ खाते-पीते हैं, न कहीं घूमने-फिरने जाते हैं, न मीठी नींद लेते हैं, न मुझसे पहले की तरह मीठी-मीठी बातें करते हैं। आपके चेहरे की चमक जाती रही है।

आँखों का वह प्रेम-भरा भाव नष्ट हो गया है। यह सब क्या है? क्या आपको कोई रोग हो गया है? मुझे तो कभी-कभी भय होता है कि मुझसे ही कोई अपराध बन पड़ा है, जिससे आपका चित्त दुखी हो रहा है।"

यह सुन सिद्धार्थ ने कहा,—"ऐं! आज तुम यह क्या कह रही हो? भला तुम से कोई अपराध क्यों होने लगा।" यह कह उन्होंने बड़े प्रेम से यशोधरा को हृदय से लगा लिया। यशोधरा के जी का संदेह जाता रहा। उसे बड़ा ढाढ़स हो गया और वह और-और बातें करने लगी।

पर जो बात थी, वह छिपने से कहाँ तक छिपती? अंत में राजा को भी इसका पता चला। इतने दिनों वे बड़े निश्चिंत थे। केवल यही अवसर देख रहे थे कि कब सिद्धार्थ को सिंहासन पर बैठाकर सोलह आने निश्चिंत हो जायँ; परंतु अब उन्होंने देखा कि यह आशा तो पूरी नहीं हुआ चाहती। वे बड़ी गहरी चिंता में पड़ गए।

इधर पूरे पंडित और सब शास्त्रों के जाननेवाले सिद्धार्थ के मन में तरह-तरह के प्रश्न उठने लगे। वे अपनी ही विद्या-बुद्धि के अनुसार उन प्रश्नों की मीमांसा करने की

भी चेष्टा करते थे। होते-होते उन्हें सब वस्तुओं से वैराग्य होने लगा। अब तो उन्हें महल-अटारी काट खाने को दौड़ने लगी। वे आदमियों की भीड़-भाड़ से अलग ही रहना पसंद करने लगे। नगर के बाहर अकेले सुनसान मैदान में टहलना उन्हें बड़ा भला मालूम पड़ने लगा। नगर, क़िला, बाग़-बग़ीचा, हाथी-घोड़ा और दुनियाँ के झगड़े-झंझटों से उन्हें घृणा होने लगी। वे अकसर रथ पर बैठे हुए घूमते-घूमते नगर से बाहर बड़ी दूर तक चले जाते थे। एक दिन वे इसी तरह घूमते हुए चले जा रहे थे। जाते-जाते उन्होंने रास्ते में एक जगह एक बूढ़े को लाठी टेककर चलते देखा। यह देख, उन्होंने अपने सारथी से पूछा,—"क्यों भाई! यह आदमी इस तरह लाठी टेककर डगमगाता हुआ क्यों चल रहा है? मैं देखता हूँ, कि यह बड़ा दुबला-पतला हो गया है, इससे ठीक खड़ा भी नहीं हुआ जाता। इसके शरीर का मांस लटक गया है, देह की नस-नस दिखाई दे रही है, बाल सारे सफ़ेद हो गए हैं, दाँत भी टूटे मालूम पड़ते हैं, हाथ-पैर काँप रहे हैं। इसका क्या कारण है?"

सारथी ने कहा,—"स्वामी! यह आदमी बूढ़ा हो गया है, इसीलिये इसका यह हाल हो रहा है। इस समय इसके

शरीर में बल-वीर्य नहीं रह गया है, इंद्रियाँ ढीली पड़ गई हैं, इसके घरवालों ने इसे छोड़ दिया है, इसीलिए यह अनाथ हो रहा है। जंगल में पड़ी हुई सूखी लकड़ी की तरह यह आदमी इस समय बिलकुल ही बेकार हो रहा है।"

यह सुन राजकुमार सिद्धार्थ ने फिर पूछा—"क्या अकेला यही आदमी बुढ़ापे के कष्ट भोग रहा है या सारे संसार के लोग इसी तरह बुढ़ापा भोगते हैं ? तुम बतलाओ तो मैं सोचूँ कि इसका कारण क्या है ?"

सारथी ने कहा—"संसार के सभी आदमी समय पर बालक से युवा और युवा से वृद्ध होते हैं। आपके पिताजी भी दिन-दिन बूढ़े होते चले जाते हैं। आप भी काल पाकर बूढ़े हो जायेंगे। कोई इससे बच नहीं सकता।"

राजकुमार ने कहा—"आदमी की समझबूझ की बलि-हारी है, जो बुढ़ापे का सोच नहीं करता और जवानी के ऐश-आराम में भूला रहता है। जब अंत में बुढ़ापा ही आना है, तब मौज-बहार में भूला रहना, बड़ी भारी भूल है।"

एक दिन और, राजकुमार नगर के दक्खिनवाले रास्ते से होकर चले जा रहे थे। उस दिन रास्ते में एक आदमी रोग से पीड़ित दिखाई दिया। उसे देखकर राजकुमार ने सारथी से पूछा—"सारथी ! इस आदमी की देह ऐसी पीली क्यों

हो रही है ? मैं देखता हूँ कि यह बड़े जोर-जोर से साँसें ले रहा है और पड़े-पड़े मल-मूत्र-त्याग कर रहा है। इसका ऐसा बुरा हाल क्यों है ?"

सारथी ने कहा—"इस आदमी को रोग सता रहा है। मालूम होता है कि अब इसका रोग नहीं छूटेगा और यह जरूर मरेगा। कारण, इसमें अब शक्ति नाम को भी नहीं रह गई है। इस बेचारे का कोई सहायक भी नहीं मालूम पड़ता।"

सिद्धार्थ ने कहा—"यह हाल देखकर तो मुझे मालूम होता है, कि रोग ने भी किसी का पिंड नहीं छोड़ा है, आदमी जितने दिन नीरोग रहे, वही बहुत है। जब ऐसी दशा है, तब आमोद-प्रमोद में दिन बिताना, मूर्खता नहीं तो और क्या है ?"

इसी तरह राजकुमार एक दिन नगर के पश्चिमी फाटक से लेकर बाहर घूमने जा रहे थे। इसी समय कुछ लोग एक लाश को लिये श्मशान की ओर जाते दिखाई दिए। यह देख राजकुमार ने कहा—"क्यों सारथी ! उस आदमी को लोगों ने इस तरह खाट पर क्यों सुला रक्खा है, और उसको एकदम कपड़े से क्यों ढक दिया है ? उसके पीछे-पीछे लोग छाती पीटते और रोते हुए क्यों जा रहे हैं ?"

सारथी बोला,—"स्वामी ! वह आदमी मर गया है । अब उसमें जान नहीं रह गई । इसीलिये लोग उसकी लाश जलाने के लिये श्मशान में लिए जा रहे हैं । अब उस बेचारे को कोई नहीं देख पाएगा । इसीलिये उसके माँ-बाप, भाई-बंधु, सब लोग छाती पीट-पीटकर रो रहे हैं ।"

यह सुन राजकुमार ने कहा,—"धिक्कार है उस जवानी को, जो बुढ़ापा आते ही बिदा हो जाती है । धिक्कार है उस शरीर को, जो तरह-तरह के रोगों का घर है । धिक्कार है उस जीवन को, जो इस तरह मिट जाता है । सब से बढ़कर धिक्कार के योग्य वह पंडित है, जो जान-बूझकर आमोद्-प्रमोद, और मौज-बहार में दिन बिताता है । दिन-रात रोग-शोक, बुढ़ापा और मौत सिर पर नाच रहे हैं, तो भी आदमी माया में लिपटा रहता है । बड़े दुःख की बात है । सारथी ! तुम रथ फेर ले चलो—मैं इस दुःख से छुटकारा पाने का उपाय ढूँढ़ निकालूँगा ।"

इन घटनाओं का राजकुमार के मन पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा । वे दिन-रात बुढ़ापा, रोग और मृत्यु की ही बात सोचने लगे । वे ज्यों-ज्यों सोचते त्यों-त्यों उनके मन में वैराग्य पैदा होता जाता था । इन्हीं दिनों वे एक दिन नगर के उत्तरी फाटक से निकलकर रथपर सवार हो चले जा रहे

थे, कि इतने में उन्हें एक संन्यासी दिखाई दिया। उसे देख उन्होंने सारथी से पूछा—"यह गेरुए कपड़ेवाला कौन है? उसके चेहरे पर चमक है, मुखड़े पर हँसी है, आँखों में तेज है, अंग-अंग से एक प्रकार की ज्योति निकल रही है।"

सारथी ने कहा—"महाराज! ये साधु हैं। इन्होंने सारी इच्छाओं और वासनाओं का त्याग कर दिया है। इनके आचार-विचार बड़े ही अच्छे हैं। सबसे मीठी बोली बोलते हैं। ये संन्यास लेकर, हिंसा और द्वेष से परे होकर, आत्मा के कल्याण का पथ ढूँढ़ रहे हैं। इस समय ये हाथ में भिक्षा-पात्र लिए भोजन की सामग्री माँगने चले हैं।"

सिद्धार्थ ने कहा—"बहुत ठीक। पंडितों ने संन्यासाश्रम की बड़ी बड़ाई की है। इस आश्रम में रहकर मनुष्य अपना भी भला कर सकता है और सारे संसार को भी लाभ पहुँचा सकता है। इसी आश्रम में आकर मनुष्य को अमृत मिलता है। बस मेरे मन को यही भाता है।"

यह बात सुन सारथी काँप गया। सिद्धार्थ ने आज अपना जी खोलकर दिखा दिया। उन्होंने मानों साफ़ बतला दिया कि आगे चलकर वे इसी आश्रम को स्वीकार करेंगे। बात राजा के कानों तक पहुँची। वे और भी चिंता में चूर हो रहे।

पाँचवाँ अध्याय

घर छोड़ना

राजकुमार बड़े भारी पंडित, सब शास्त्रों के जानने-वाले थे। वे बड़े ही भावुक थे सही; पर भावुकता के फेर में पड़कर कभी युक्ति और तर्क को हाथ से नहीं जाने देते थे। उनके हृदय में दया और प्रेम की नदी उमड़ रही थी, तो भी वे कभी इस भाव के वश में होकर अंधे की तरह होकर कोई काम नहीं करते थे। उन्होंने पहले बहुत कुछ सोच-समझकर ही विवाह किया और गृहस्थाश्रम में चले आए थे। अब उन्होंने सब बातों का विचार कर संन्यास ले लेने का ही निश्चय किया। यह विचार दिन-दिन पक्का होता गया। इन्हीं दिनों उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

पुत्र के जन्म का समाचार पाते ही सिद्धार्थ ने सोचा कि अब तो माया का बंधन और भी अधिक जकड़ा चाहता है, इसलिये अब देर करना ठीक नहीं। परंतु संन्यास लेने के पहले अपने बूढ़े बाप और प्यारी स्त्री से बिदा माँगना बहुत जरूरी समझकर वे राजमहल में आए। उस समय उनके पुत्र-जन्म की ख़ुशी में आनंद के बाजे बज रहे थे, मंगल के गीत गाए जा रहे थे, याचकों को मुँह माँगा दान दिया जा रहा था। सिद्धार्थ ने इन सब बातों को

ओर ध्यान नहीं दिया और सीधे अपने पिता के पास आकर उन्हें प्रणाम किया।

बूढ़े राजा ने बड़े प्यार से कुमार को गले लगाते हुए उन्हें आशीर्वाद दिया। मोह से अंधे बने हुए राजा बेटे के मुखड़े का बदला हुआ तौर देखकर ही उनके दिल की ताड़ गए। बस उनका कलेजा धक से हो गया, आँखें भर आईं। सिद्धार्थ ने इस ओर ध्यान न देकर संन्यास लेने की आज्ञा माँगी। राजा पहले तो हृदय भर आने से कुछ भी न कह सके; पीछे अपने दिल को खूब कड़ा करके राजकुमार को समझाने लगे कि इस अवस्था में संन्यास लेना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। वे उन्हें तरह-तरह से समझाने लगे, कि तुम्हारे चले जाने से मुझ बूढ़े का क्या हाल होगा, तुम्हारी युवती स्त्री और नन्हे से बच्चे की क्या दशा होगी; पर उनकी कोई बात सिद्धार्थ के गले के नीचे नहीं उतरी। वे पिता की प्रत्येक बात का उत्तर देने लगे। पर मोह क्या मनुष्य का पिंड सहज ही छोड़ता है? राजा मोह-माया को त्यागकर पुत्र को हाथ से निकाल देने को तैयार नहीं थे। अंत में राजा ने कहा—"पुत्र! तुम्हें किस बात की कमी है, जिसके लिये तुम संन्यास ले रहे हो? मेरे घर में क्या नहीं है?"

सिद्धार्थ ने कहा—"पिताजी ! मैं देखता हूँ कि इस संसार में रोग-शोक, बुढ़ापे और मृत्यु से कोई बचा नहीं है। मैं इनके हाथ से बचना चाहता हूँ। मैं चाहता हूँ कि बुढ़ापा मेरी जवानी को चौपट न कर सके। रोग मुझे सता न सके। मृत्यु मुझे खा न सके। यदि गृहस्थाश्रम में रहने से मुझे ये बातें मिल सकें, तो मैं कभी संन्यास का नाम भी न लूँगा।"

राजा ने कहा—"बेटा ! यह अनहोनी बात है।"

सिद्धार्थ ने कहा—"मैं संन्यास लेकर इसी अनहोनी को होनी कर दिखाऊँगा। मेरी इच्छा है कि आजकल जो यज्ञों में पशुओं की बलि दी जाती है, वह बंद हो जाय और मैं इस बात की खोज करूँ कि मनुष्य संसार के अनंत दुःखों से क्योंकर छुटकारा पा सकता है। गृहस्थाश्रम में रहकर, राज्य के झंझटों में पड़ना पड़ेगा। इसलिये मैं यह काम कभी न कर सकूँगा, इसलिये मुझे संन्यास लेना ही पड़ेगा।"

इसी तरह जब सिद्धार्थ ने राजा की कोई बात नहीं मानी और बार-बार संन्यास लेने की ही बात कहने लगे, तब लाचार राजा ने उन्हें संन्यास लेने की आज्ञा दे दी। सिद्धार्थ हँसते हुए पिता को प्रणाम कर वहाँ से चल पड़े; परंतु यहाँ

से सदा के लिये चले जाने के पहले एक बार अपनी प्यारी स्त्री यशोधरा और हाल के जन्मे पुत्र को देखे बिना वे कहीं न जा सके। इसीलिये वे यशोधरा के महल की ओर चले।

उस समय राजमहल में चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। गाना-बजाना बंद हो गया था। दीप झिलमिला रहे थे। यशोधरा के कमरे के सामने नाच-गान के लिये जो शामियाना खड़ा किया गया था। उसके नीचे बहुत-से लोग नींद में बेसुध पड़े हुए थे। यह देख सिद्धार्थ के मन में वैराग्य और भी प्रबल हो उठा। वे धीरे-धीरे यशोधरा के कमरे में आ पहुँचे। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि यशोधरा अपने बच्चे को गोद में लिये बेसुध सोई हुई है, उस बेचारी को क्या मालूम था कि उसके प्राण-प्यारे सिद्धार्थ उसे जीवन-भर के लिये अंतिम बार देखने आए हैं। अगर वह जान जाती, तो आज यह इतिहास ही कुछ और तरह का होता! सिद्धार्थ ने जी भरकर अपनी स्त्री और पुत्र को देखा और चाहा कि एक बार बच्चे को गोद में उठाकर उसका मुँह चूम लूँ; पर तुरंत ही उनके जी में आया कि माया का जाल काटना ही इस समय उचित है। कारण, यदि मैं पुत्र को गोद में लेने जाऊँगा, तो यशोधरा की नींद टूट जायगी और वह मुझे कभी घर छोड़कर जाने नहीं देगी। यही सोचकर

उन्होंने अपनी इच्छा की बाग मोड़ ली और एक बार और आँखें भरकर स्त्री-पुत्र को देख, उनकी भलाई के लिये भगवान् से प्रार्थना करते हुए चुप-चाप घर से बाहर हो गए।

बाहर आकर राजकुमार सिद्धार्थ ने छंदक नाम के अश्वपाल को बुलाकर अपने प्यारे घोड़े कंटक को ले आने की आज्ञा दी। अश्वपाल ने हाथ जोड़े बड़ी विनय के साथ इतनी रात को घोड़ा मँगवाने का कारण पूछा। कुमार ने उसको अपना अभिप्राय बतला दिया। सुनकर उस पुराने नौकर ने बड़ी बिनती के साथ कहा—"युवराज ! मैं आपके घर का बहुत पुराना नौकर हूँ। मैं सदा इस राजवंश की भलाई के लिये भगवान् से प्रार्थना किया करता हूँ। इसीलिये आपसे यह निवेदन करने का साहस करता हूँ कि आप इस तरह घर छोड़कर मत जायँ। इससे आपका घर सूना हो जायगा। आपके शोक में आपके पिता के प्राणों पर आ बनेगी, आपकी नई-नवेली पत्नी और हाल के पैदा हुए बच्चे को बड़ा कष्ट होगा। सारा राज्य तबाह हो जायगा। प्रजा उलटी राह चलने लगेगी। सब-के-सब अपने मतलब के हो जायँगे। क्या आपको अपने बूढ़े पिता पर कुछ भी प्रेम नहीं है ? क्या आपकी पत्नी आपकी सेवा में कुछ त्रुटि करती है ? क्या आप अपने चाँद से मुखड़े-

वाले नन्हे से बच्चे का मुँह देखकर भी अपना यह विचार नहीं बदल सकते ? हम सब आपके आज्ञाकारी दास हैं। आपके ही भरोसे जीते हैं। क्या आपको हम लोगों की दशा पर भी दया नहीं आती ?

कुमार ने इन सब बातों का उचित उत्तर देकर अपने पिता को चुप करा दिया था ; फिर छंदक का मुँह बंद करते उन्हें क्या देर लगती ? उन्होंने बड़े प्रेम से छंदक को समझा-बुझाकर उसे चुप करा दिया। उन्होंने कहा,—"प्यारे छंदक ! तुम्हारी अनुराग-भरी बातें सुनकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। तुमने जिन सब सुखों की याद दिलाई है, उन्हें मैं अच्छी तरह भोग चुका। पर अब मेरा संसार से जी उचट गया है। मैंने घर छोड़ने का पूरा इरादा कर लिया है। अब मुझे कोई, किसी तरह, इस इरादे से नहीं हटा सकता।"

छंदक समझ गया कि कुमार अब किसी तरह किसी के रोके नहीं रुक सकते। लाचार, वह घोड़ा कस लाया। पुष्य नक्षत्र में, रात के दूसरे पहर में, सिद्धार्थ घोड़े पर सवार हो, राज्य को छोड़ चले। छंदक उनके पीछे-पीछे चला।

छठा अध्याय

संन्यास और योग

रातोरात सिद्धार्थ कपिलवास्तु से बहुत दूर चले गए। सवेरा होते ही वे अनमा नदी के तीर पर एक आम के बग़ीचे में आ पहुँचे। यह स्थान कपिलवास्तु से ४५ कोस की दूरी पर था, इसलिये राजधानी से किसी के जल्दी यहाँ आने की संभावना नहीं थी। इसी से कुमार ने वहीं डेरा डाला। वहीं सिद्धार्थ ने अपने भौंरे के समान काले और रेशम की तरह मुलायम बालों को तलवार से काट फेंका और अपने शरीर के गहने उतारकर छंदक को दे दिए। उधर से ही एक व्याध चला जा रहा था कुमार ने उसे बुलाकर अपने बहुमूल्य कपड़े उतारकर उसे दे दिए और उसके फटे कपड़े माँगकर आपने पहन लिए। राजकुमार सिद्धार्थ ने राजसी वेश त्यागकर तत्त्व की खोज में फिरनेवाले संन्यासी का वेश धारण किया। उसके बाद उन्होंने छंदक को घोड़े के साथ राजधानी को लौट जाने की आज्ञा दी। राजकुमार का वह वेश देख छंदक की आँखें भर आईं। वह दोनों हाथों से मुँह ढँककर बच्चे की तरह सिसक-सिसककर रोने लगा। सिद्धार्थ सारी मार्ग

काटकर घर छोड़ आए थे, तो भी छंदक की रुलाई से उनका चित्त थोड़ी देर के लिये चंचल हो गया। सच है, जो घटा कलेजे में वज्र छिपाए रहती है, वही ठंडी हवा लगने से शीतल जल बरसाने लगती है। उनका हृदय दृढ़ था, तो भी वे छंदक का रोना देखकर आँखों के आँसू न रोक सके। पर यह आँसू केवल पिता, पत्नी या छंदक के दुःख-कष्ट को याद करके निकल पड़े हैं या सारे संसार के सभी प्राणियों के—छोटे-बड़े सभी जीवों के—दुःख-कष्ट को स्मरण करके, यह छंदक की समझ में नहीं आया। थोड़ी ही देर में अपनी आँखें पोंछकर कुमार ने छंदक को बिदा किया। वह रोता हुआ राजधानी की ओर लौट चला।

वहाँ से कुमार सिद्धार्थ वैशाली-नगर की ओर चले। रास्ते में वे शाक्या और पद्मा नाम की दो ब्राह्मण की स्त्रियों के अतिथि रहे। उनसे बिदा होकर वे रैवतक ऋषि के आश्रम में कुछ दिन रहे। यहीं उन्होंने 'आराडकालाम' नाम के एक दर्शन-शास्त्र के पंडित की बड़ी प्रशंसा सुनकर उनका शिष्य हो जाना चाहा। पंडित कुमार की छोटी अवस्था देख और उनकी बातें सुन बड़े आश्चर्य में पड़े। वे कुमार को बड़े प्रेम से दर्शन और योग-शास्त्र की शिक्षा देने लगे। उन्होंने कुछ दिन वहीं रहकर योगाभ्यास किया;

पर इससे उनकी आत्मा को तृप्ति नहीं हुई, इसलिये वे वहाँ से मगध की ओर चल पड़े।

उन दिनों राजगृह में ही मगध की राजधानी थी। वहाँ राजा बिंबिसार राज्य कर रहे थे। एक दिन सिद्धार्थ भिक्षा माँगने के लिये राजा के द्वार पर आ पहुँचे। सब लोग उनका डील-डौल, चेहरा-मोहरा और देह-धजा देखकर अचंभे में पड़ गए। लोगों को भ्रम होने लगा कि कहीं यह कोई देवता तो नहीं हैं। राजा बिंबिसार को जब यह हाल मालूम हुआ, तब वे स्वयं इस युवा योगी को देखने के लिये चले आए। राजा ने बड़े आदर से हाथ जोड़े हुए कहा—"हे महापुरुष! आप कृपा कर यहीं रहें और मुझे राज्य चलाने में सहायता दें। आपको यहाँ किसी तरह का कष्ट न होगा। आपके दर्शनों से मैं कृतार्थ हो गया।"

सिद्धार्थ ने कहा—"राजन्! आपका मंगल हो। मुझे किसी तरह का सुख या आराम नहीं चाहिए। मैं सारी वासनाओं का त्याग कर चुका हूँ; क्योंकि वासनाएँ ही सारे अमंगल का मूल हैं।"

इसके बाद राजा ने कुमार का परिचय पूछा। उन्होंने ज्यों-की-त्यों सब बातें बतला दीं। सब सुनकर राजा ने

कहा—"हे देव ! यदि आप अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त कर बुद्ध (ज्ञानी) हो जायँ, तो मैं आपके ही धर्म की शरण में चला आऊँगा।" यह कह राजा अपने महलों में चले आए।

राजगृह में रहते समय सिद्धार्थ ने रुद्रक नाम के एक और दार्शनिक पंडित की बड़ी प्रशंसा सुनी। इस पंडित का कहना था कि जो मुक्ति-लाभ करना चाहे, उसको श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा (बुद्धि) इन पाँच वस्तुओं का सहारा लेना चाहिए। इनकी सहायता से मनुष्य ज्ञान और अज्ञान दोनों ही के परे हो जाता है। सिद्धार्थ ने कुछ दिन इन पंडितजी के पास भी शिक्षा ग्रहण की; पर यह शिक्षा भी उनके मन के अनुकूल नहीं हुई। वहाँ से चलकर वे गया-शीर्ष-नामक पर्वत पर चले आए और वहीं बहुत दिनों तक ध्यान लगाए धर्म की बारीकियों की खोज करते रहे। इसी समय सिद्धार्थ ने बहुत सोच-विचार करके देखा कि जब तक मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह और अभिमान आदि के वश में रहता है, तब तक उसे ज्ञान नहीं होता। इसीलिये शरीर के भीतर रहनेवाले इन शत्रुओं से अपनी आत्मा की रक्षा करते हुए वे सच्चे ज्ञान की खोज में लगे रहे। जब किसी तरह उस ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई, तब वे

वहाँ से चल पड़े और निरंजना नदी के तीर पर बसे हुए उरुविल्व-नामक ग्राम में आ पहुँचे। वहीं नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठकर वे चारों ओर देखने लगे। वह स्थान उन्हें बड़ा ही मनोहर मालूम पड़ा। सामने पर्वत, उसके नीचे नदी और चारों ओर पेड़-पत्तों की हरियाली देख उनकी राह की थकावट दूर हो गई। चारों ओर से फूलों की भीनी-भीनी सुगंध आकर उनको और भी प्रसन्न करने लगी। यद्यपि वे संन्यासी हो गए थे और रूप, रस, गंध, स्पर्श आदि का उपभोग करने से मुँह मोड़ चुके थे, तथापि प्रकृति के दिए हुए इस उपहार को वे स्वीकार किए बिना न रह सके। उस स्थान की मनोहरता ने उनको अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने वहीं पर बैठकर साधना करने का विचार किया।

सिद्धार्थ ने सब शास्त्रों को पढ़ा था और सबकी बातें जानते थे; परंतु उन्होंने देखा कि इनके पढ़ने से ही मनुष्य को मुक्ति नहीं मिल सकती। एक दिन उन्होंने सोचते-सोचते विचार किया कि दो सूखी लकड़ियों को आपस में रगड़ने से आग पैदा होती है; पर जब तक वे गीली रहती हैं, तब तक उनसे आग नहीं पैदा हो सकती। इसी तरह जब तक मनुष्य का मन और उसकी देह विषय-भोग से सींची

जाती है, तब तक उनसे ज्ञान-रूपी अग्नि नहीं उत्पन्न हो सकती। इसलिये दिव्य ज्ञान पाने के लिये देह और मन को लकड़ी की तरह सुखा डालना चाहिए। मतलब यह कि देह को कठिन तप द्वारा और मन को वैराग्य के विचारों द्वारा एकदम विकार से रहित बना देना चाहिए। यही सोच-कर वे वहीं कठिन योग-साधना करने लगे। उन्होंने धीरे-धीरे नींद, भूख और प्यास को भी रोकना शुरू किया। इसी समय सिद्धार्थ के पास पाँच आदमी और आ पहुँचे तथा उनके चेले बनकर वहीं रहने लगे। वे लोग उनकी आज्ञा के अनुसार खाने-पीने की चीजें ले आया करते थे। क्रम से उनका खाना-पीना भी बहुत ही कम होने लगा। यहाँ तक कि कभी-कभी एक छोटी-सी इमली, एक छोटा-सा बेर, या एक एक दाना चावल खाकर और चुल्लू-भर पानी पीकर ही रह जाते थे। उन्हें धूप या वर्षा की कोई चिंता न रही। वे नंगे बदन, आसन मारे, जेठ की कड़ाकेदार धूप में, सावन-भादों की झड़ी में, पूस-माघ के जाड़े में एक-सी दृढ़ता के साथ ध्यान लगाए रहते थे। इसी तरह उन्होंने छः वर्ष बिता दिए। देह में केवल हड्डी और चमड़ा ही रह गया। अगर इस समय उनके पिता भी उनको आकर देखते, तो शायद नहीं पहचान सकते।

छः वर्ष तक इस प्रकार कठिन योग-साधना करने के बाद एक दिन उन्हें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस तरह देह को गला देने से तो मैं जिस ज्ञान की खोज में हूँ, वह तो मिलेगा ही नहीं, उलटा यह शरीर भी नहीं रहेगा। इसलिये उन्होंने सोचते-सोचते यही निश्चय किया कि बीच का रास्ता ही ठीक है, यानी देह को न तो सोलह आने भोग-विलास के पंजे में फँसने देना चाहिए और न उसे कठिन योग करके सुखा डालना ही उचित है। यही सोचकर वे योगासन से उठे; पर दो-ही-चार पग चले थे कि एकाएक गिरकर बेहोश हो गए। थोड़ी देर बाद उन्हें होश हुआ। इसी समय एक स्त्री वन-देवता की पूजा के लिये एक थाली में थोड़ी-सी खीर लिए वहाँ आई। कहते हैं, उस स्त्री ने वन के देवता की मन्नत मानी थी, जिससे उसके पुत्र हुआ था। इसीलिये वह उस दिन देवता को खीर का प्रसाद चढ़ाने आई थी। सिद्धार्थ को देखकर उसने सोचा कि यही वन-देवता हैं। उसने खीर उनके आगे रख दी। सिद्धार्थ ने बड़े प्रेम से उसकी भेंट स्वीकार की और निरंजना नदी में नहाकर वही खीर खाई। बहुत दिनों बाद नहाने-खाने से उन्हें बड़ा सुख मालूम हुआ। उनका यह हाल देख, उनके पाँचों शिष्य उन्हें पाखंडी जान छोड़कर चल दिए। वे फिर अकेले हो गए।

सिद्धार्थ फिर चिंता करने लगे। वे समझ गए कि मुझे अभी तक ज्ञान नहीं हुआ है। अब वे अपने नए विचार के अनुसार बीच के पथ से चलने लगे। अब वे भूख-प्यास को मारने का कभी विचार नहीं करते; पर ध्यान-धारण पहले ही की तरह चलती रही। वे उसी जंगल में एक बड़े भारी पीपल के पेड़-तले बैठकर पद्मासन मारे ध्यान करने लगे। इस बार उनकी तपस्या सफल हुई। जिस सत्य की खोज में थे, वह उन्हें मिल गया। उनकी साधना की सिद्धि हो गई। उनका सिद्धार्थ नाम आज ही यथार्थ हुआ। इसी समय से वे सिद्धार्थ से बुद्ध (ज्ञानी) हुए और पीपल का पेड़ 'बोधि-वृक्ष' कहलाया। आज तक वह स्थान संसार का एक बहुत बड़ा तीर्थ बना हुआ है।

हाँ, तो सिद्धार्थ के मन से जब सारे संदेह मिट गए, तब उन्हें कौन-सा दिव्य ज्ञान मिल गया? इसके बारे में इतना ही कहना काफी है कि जिन सब कारणों से संसार के जीवों को दुःख भोगना पड़ता है, उन कारणों और उनसे छूटने के उपायों का उन्हें पूरा ज्ञान हो गया। उन्होंने आगे चलकर अपने इस ज्ञान का सारे संसार को दान किया और जीवों को दुःख से बचने का उप-देश दिया।

उन्होंने देखा कि अविद्या ही सारे अनर्थों की जड़ है। जो इसका नाश कर सकता है, उसे फिर कोई दुःख-कष्ट नहीं व्यापता। इसका नाश करने के लिये पवित्र विचार, पवित्र भाव, पवित्र कार्य, पवित्र वचन, पवित्र जीविका, पवित्र चेष्टा, पवित्र चिंता और पवित्र स्मृति इन आठ उपायों से काम लेना चाहिए।

इस ज्ञान की प्राप्ति के बाद बुद्ध की उपाधि धारण कर उन्होंने उसी स्थान पर ४६ दिनों तक फिर ध्यान लगाया। इससे उनका चित्त और भी शांत हो गया। उन्होंने आप-ही-आप कहा—"इस देह को बनानेवाली वासना ही है। यही बार-बार मनुष्य को दुनिया में घसीट लाती है। बार-बार पैदा होना और मरना कितने दुःख की बात है! आज मैंने इस वासना को अच्छी तरह पहचान लिया। अब यह इस देह को फिर नहीं पैदा कर सकेगी। मैंने इस घर के सभी खंभे तोड़ डाले।"

इस तरह अपने चित्त को पूरी तरह शांत कर, वासना का गढ़ ढाकर, वे संसार के सभी जीवों का दुःख दूर करने और उन्हें प्रेम-धर्म का ज्ञान सिखलाने का विचार करने लगे।

सातवाँ अध्याय

बौद्ध-धर्म

अपने धर्म का संसार में प्रचार करने के लिये बुद्ध ने योग्य व्यक्तियों को ढूँढना शुरू किया; क्योंकि ऐसे-वैसे आदमी को यह सब बातें बतलाना अपनी हँसी कराना था। सबसे पहले उन्होंने रुद्रक का पता लगाया। मालूम हुआ कि वे तो कभी के मर गए। 'आराडकालाम' की भी मृत्यु हो गई थी। इसलिये उन्होंने कौंडिन्य, भद्रजित, वाष्प, महानाम और अश्वजित नाम के उन पाँचों शिष्यों का पता लगाया, जो कुछ दिन उनके पास रहे थे। मालूम हुआ, कि वे सब आजकल काशी में हैं। वे उन्हें ढूँढते हुए काशी के पास ही 'मृगदाव'-नामक स्थान में आ पहुँचे। उन पाँचों ने दूर से ही इन्हें आते देखा और पहचानकर आपस में सलाह करने लगे कि ये तो अवश्य ही योग-भ्रष्ट हो गये हैं, इसलिये हमें इनको प्रणाम नहीं करना चाहिए। वे सलाह कर ही रहे थे कि बुद्धदेव उनके सामने चले आए। उनका वह तेज से तपता हुआ मुखड़ा देखते ही वे पाँचों चुपचाप उठकर खड़े हो गए और उनके सिर बुद्ध के सामने आप-से-आप झुक गए। उन्होंने बड़े आदर से बुद्धदेव को

बैठने के लिये आसन दिया। बैठते ही बुद्धदेव अपने नवीन सत्य की बातें उन्हें बताने लगे। वे पाँचों भी पूरे पंडित, संयमी और साधु थे; पर अब तक सच्ची राह नहीं मालूम होने से भटकते चलते थे। अब के बुद्धदेव की बातें सुनकर उनके सारे संदेह मिट गए। बुद्धदेव ने कहा—

"हे ब्राह्मण-कुमारो! तुम लोगों ने घर छोड़ दिया है सही; पर अभी तुम्हें दो चीजें और छोड़नी होंगी—एक तो इंद्रियों से अनुभव किया जानेवाला सुख और दूसरा शरीर को व्यर्थ ही कष्ट देना। जैसे अधिक खा लेने से भी कष्ट होता है और उपवास करने से भी; वैसे ही न तो विलास ही ठीक है और न एकदम वैराग्य ही। बीच का रास्ता पकड़ो। मैंने भी यही बीचोबीच की राह पकड़ी है। यही रास्ता सबसे अच्छा है। इसीसे मुझे सिद्धि मिली है और मैं बुद्ध हो सका हूँ। मुझे दिव्य ज्ञान हो गया है, सबसे बढ़कर शक्ति मिल गई है। किसी तरह की वेदना या तृष्णा से मेरा चित्त चंचल नहीं होता। तुम लोग भी इसी रास्ते पर चलो। तुम्हें भी दिव्य ज्ञान होगा और पूरी शांति मिलेगी। हृदय में सच्चे ज्ञान का प्रकाश होगा और तुम मुक्ति पा जाओगे। सम्यक् संकल्प, सम्यक्, वाक्य सम्यक् दृष्टि, सम्यक् जीविक, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि

इन्हीं आठ उपायों को तुम्हें काम में लाना होगा। ऐसा करने से तुम्हारे जीवन धर्ममय हो जायँगे। तुम्हें फिर संसार में पैदा होकर जन्म, मरण और बुढ़ापे के कष्ट नहीं भोगने पड़ेंगे।

"हे धर्म के जाननेवालो! मैं तुम्हें आठ उपाय बतला चुका, अब चार महासत्यों की बात सुनो। पहला सत्य तो यह है कि इस संसार में केवल दुःख-ही-दुःख है। दूसरा यह कि जीव के जीवन में दुःख संचित रहता है। तीसरा यह कि यह दुःख का पहाड़ ढा दिया जा सकता है और चौथा यह कि इस दुःख का नाश विशेष उपायों द्वारा हो सकता है। अब इनका खुलासा मतलब सुनो। जीव तृष्णा यानी वासना के फेर में पड़कर भोग और विलास के पीछे दौड़ता है, जिससे उसका मन सदा चंचल रहता है, इसीलिये उसे प्रायः सदा ही दुःख उठाना पड़ता है। जो इस वासना को दिल से दूर कर देता है, उसका चित्त शांत हो जाता है, उसे फिर सुख-दुःख दोनों ही एक-से मालूम पड़ते हैं। पहले जो मैंने आठ उपाय बतलाए हैं, उन्हें ही काम में लाने से जीव सारे दुःखों से सदा के लिये छुटकारा पा जाता है।

"मुझे ये सब बातें किसी गुरु ने नहीं बतलाईं। मैंने स्वयं ही अपनी विचार-शक्ति द्वारा इन सत्यों का पता पाया है,

जिससे मेरे हृदय में इस समय ज्ञान की ज्योति जगमगा रही है। अब मेरे मन में किसी प्रकार का संदेह नहीं रह गया है। अब मेरे मन में किसी प्रकार का भ्रम नहीं रहा।"

बुद्धदेव के अमृत-भरे वचन सुनकर उन पाँचों ने उनके नए धर्म की दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। बुद्धदेव ने पहले कौंडिन्य को और उसके बाद बारी-बारी से बाक़ी चारों को भी दीक्षा दी। सबसे पहले पुण्यपुरी काशी में ही इस नए धर्म का झंडा फहराया।

कुछ दिनों तक बुद्धदेव वहीं रहे। इसी बीच वहाँ के बहुत से लोगों ने उनके नए धर्म की दीक्षा ली। इसके बाद वे बहु-तेरे स्थानों में अपने धर्म का प्रचार करने के लिये घूमे। इसका हाल आगे चलकर लिखा जायगा। यहाँ पर कुछ थोड़ी-सी बातें बौद्ध-धर्म की लिखी जाती हैं, जिससे पाठकों को यह मालूम हो जाए कि भगवान् बुद्धदेव किन-किन बातों का उप-देश कर रहे थे।

भगवान् बुद्ध के ज्ञान-लाभ करने के पहले हमारे देश में अनेक प्रकार के धर्म फैले हुए थे। उनमें कितने ही अनाचार फैले हुए थे। बुद्ध ने उन सब अनाचारों को मिटाने और संसार के लोगों को सच्चा धर्म सिखलाने का विचार किया। उन्होंने अपनी साधना के द्वारा यही ज्ञान लाभ किया कि कौन-सा

उपाय अवलंबन करने से जीव इस संसार के दुःखों से उद्धार पा सकता है। इन दोनों तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करने के पहले से ही वे पूर्व-जन्म, पर-जन्म और कर्म-फल इन तीनों बातों पर विश्वास करते थे। उनका यह विश्वास था कि जीव कर्मों के ही अनुसार बार-बार जन्म ग्रहण किया करता है। जन्म होने से ही उसे सुख-दुःख भोगना पड़ता है। इसी बार-बार के जन्म ग्रहण करने से पिंड छुड़ाने का उपाय बतलाना ही बौद्ध-धर्म की मुख्य बात है। इसके लिये बौद्ध-धर्म में बहुत-से संयम-नियम बतलाए गए हैं। इन सब नियमों का पालन करने से जीव कर्म-फल के बंधन से छुटकारा पा जाता है और मरने के बाद उसकी मुक्ति हो जाती है। उसे फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

पहले-पहल बुद्ध ने बौद्ध-धर्म की दीक्षा लेनेवालों के लिये कोई नियम नहीं बनाया था। पीछे जैसे-जैसे आवश्यकता मालूम होती गई, वैसे-वैसे नए-नए नियम बनते गए। नीचे लिखी दस बातों की प्रतिज्ञा हरएक दीक्षा लेनेवालों को करनी पड़ती थी—

(१) मैं किसी जीव की हत्या नहीं करूँगा।

(२) मैं दूसरे की कोई चीज़ नहीं चुराऊँगा।

(३) मैं पराई नारी को माता समझूँगा।

(४) मैं कभी झूठ नहीं बोलूँगा ।

(५) मैं कभी शराब नहीं पिऊँगा ।

(६) मैं दिन के तीसरे पहर में भोजन नहीं करूँगा ।

(७) मैं कभी नाच-गान में शामिल नहीं हूँगा ।

(८) मैं शौक़ीनी के लिये इत्र-फुलेल या फूल-माला का व्यवहार नहीं करूँगा ।

(९) मैं कभी ऊँचे आसन पर नहीं बैठूँगा या ऊँची शय्या पर नहीं सोऊँगा ।

(१०) मैं कभी सोना-चाँदी दान में नहीं लूँगा ।

इन प्रतिज्ञाओं के करने पर लोग आचार्य के पास रहकर धार्मिक जीवन व्यतीत करते थे । वे सदा सिर और दाढ़ी-मूँछ घुटवाए रहते थे । उनको सदा जीव-हिंसा से दूर रहना पड़ता था ।

अपने पुराने चेलों को अपने इस नए धर्म में ले आने के बाद बुद्धदेव कुछ दिन और काशी में ही रहे । वहाँ के एक बड़े भारी सेठ का नाम 'यश' था । उसने भी इनकी शरण में आकर बौद्ध-धर्म ग्रहण किया । उसके आचार-विचार बिलकुल बदल गए । जो दिन-रात फंद-फ़रेब करके रुपए कमाने में लगा रहता था, वह पूरा धर्मात्मा हो गया । यह देख प्रायः साठ आदमियोंने और बौद्ध की शरण ली । बुद्धदेव ने

इन लोगों को इस नए धर्म का प्रचार करने की आज्ञा दी।

इसके बाद वे फिर गया के पास 'उरु विल्व'-नामक स्थान में चले आए। जहाँ बोधि-वृक्ष के नीचे उन्हें पहलेपहल ज्ञान हुआ था। यहाँ आकर उन्होंने बहुत-से विलासी युवकों को अपना धर्म बतलाया। जो पहले केवल ठाट-बाट और ऐश-आराम में ही डूबे रहते थे, वे अब सारी मोह-माया छोड़कर पूरे वैरागी-से बन गए। जो रेशमी वस्त्र पहने, इत्र-फुलेल लगाए, ठाट से इतराते चलते थे, वे सिर मुड़ाए, हाथ में कमंडलु लिए, पीली धोती पहने घूमने लगे। चारों ओर यह परिवर्तन देखकर हलचल-सी मच गई। सब लोग एक दूसरे से पूछने लगे कि बुद्धदेव के पास कौन-सा ऐसा मंत्र है, जिसके प्रभाव से वे मनुष्य को एकदम से ऐसा कुछ-का-कुछ बना देते हैं? उनके धर्म का गूढ़ तत्त्व जानने के लिये सब लोग व्याकुल हो गए। दल-के-दल लोग उनके पास पहुँचने लगे। बुद्धदेव सब लोगों को अपने धर्म का रहस्य बतलाने लगे। इसी समय तीन वानप्रस्थी ब्राह्मणों ने उनका धर्म ग्रहण किया। इस घटना से सारे गया-प्रांत में हलचल-सी मच गई; क्योंकि इन ब्राह्मणों के वहाँ हज़ारों चेले थे। इसके बाद बुद्धदेव गया-शीर्ष-नामक पर्वत पर

चले आए। कुछ दिन उसी पर्वत पर रहने के बाद वे राज-गृह में चले आए।

राजगृह में उन दिनों बिंबिसार नाम के राजा राज्य कर रहे थे। नगर बड़ा ही सुंदर था। उसके चारों ओर पर्वत थे। यह नगर गया से पूरब और पटने से दक्खिन-पूरब के कोने पर बसा था। इस नगरमें बुद्धदेव एक बार और आए थे। उस समय उन्हें ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ था। इस बार वे अपने बहुत-से शिष्यों के साथ आकर पास के गृद्ध-कूट-नामक पर्वत पर जा टिके। एक दिन उनका एक शिष्य नगर में भिक्षा माँगने आया। रास्ते में उसे एक परिव्राजक संन्यासी का शिष्य मिल गया। उसका नाम सारिपुत्र था। सारिपुत्र बुद्ध के उस चेले की आनंद से चमकती हुई मूर्ति देखकर मोहित हो गया और उससे पूछने लगा कि तुम किसके शिष्य हो? बुद्ध के उस चेले का नाम अश्वजित था। अश्वजित ने उसे अपना पूरा परिचय दिया। साथ ही उसने अपने गुरु के कुछ उपदेश भी सारिपुत्र को सुनाए। उसने अपने गुरु संजय के पास आकर उनसे बिदा माँगी और अपने कितने ही गुरुभाइयों के साथ-साथ बुद्ध के पास आकर बौद्ध-धर्म की दीक्षा ले ली। इनके भी कितने ही शिष्य थे। वे सभी इस नए धर्म की छाया में चले आए।

यह समाचार सुनकर राजा बिंबिसार बुद्धदेव से मिलने आए। उनके दर्शन कर और उनकी अमृत-भरी वाणी सुन-कर राजा को बड़ा आनंद हुआ। उन्होंने बड़ी भक्ति के साथ बुद्ध के चरणों में सिर झुकाया। उसी समय उन्होंने भी यह नया धर्म स्वीकार किया। राजा के साथ जो हज़ारों ब्राह्मण वहाँ आए थे, उन्होंने भी यह धर्म ग्रहण कर लिया। उसके बाद राजा ने बुद्ध और उनके शिष्यों को राजमहल में आकर भोजन करने का निमंत्रण दिया। बुद्धदेव ने उनका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। मगध के राजा ने इससे अपने को बड़ा बड़भागी माना।

बहुत-से ब्राह्मणों को अपना धर्म बदलते देख ब्राह्मण-समाज में बड़ी खलबली मची। वे लोग बुद्धदेव पर बड़े क्रोधित हुए। पर यह क्रोध बहुत जल्द जाता रहा; क्योंकि स्वयं राजा और उनके राज्य के बहुत-से माननीय ब्राह्मण इस धर्म को स्वीकार कर चुके थे। कुछ दिन और वहाँ रहने के बाद बुद्धदेव अपनी जन्मभूमि के दर्शन करने चले। उनके राजधानी में आने का समाचार सुनकर उनके पिता राजा शुद्धोदन उनके पास आए। कहाँ राजकुमार सिद्धार्थ और कहाँ हाथ में भिक्षा का पात्र लिए, सिर मुड़ाए, पीला वस्त्र पहने, भिक्षुक-वेश में बुद्ध! आकाश-पाताल का अंतर

था। राजा अपने पुत्र का यह बदला हुआ रूप देख थोड़ी देर के लिये चुप हो रहे। बुद्ध का चित्त पिता को देखकर तनिक भी चंचल नहीं हुआ। उन्होंने उनसे भिक्षा माँगी। राजा ने कहा—"राजकुमार होकर भी आज तुमने भिक्षा-वृत्ति क्यों स्वीकार की? मेरे यहाँ क्या नहीं था?"

बुद्ध ने कहा—"इस समय मैंने जो धर्म स्वीकार किया है, उसका यही नियम है। मैंने कुल के साथ-ही-साथ कुल का धर्म भी त्याग दिया है। इससे आपके लज्जित होने का कोई कारण नहीं है।"

इसके बाद राजा बुद्ध को अपने घर ले आए। उनके साथ-साथ उनके शिष्य भी राजमहलों में आए। उन्हें देखने के लिये हज़ारों स्त्री-पुरुष वहाँ पहुँचे। उन्हें देखकर किसी की आँखें भर आईं, किसी का जी भर आया, और कोई विस्मय में डूब गया। कोई निंदा और कोई प्रशंसा करने लगा। इसके बाद बुद्ध ने सबको अपना उपदेश सुनाया। सुनते ही सब लोग मोहित हो गए। इस प्रकार बहुत-से लोग वहाँ आए; पर बुद्ध की पतिव्रता पत्नी यशोधरा नहीं आई। इसका यह मतलब नहीं है कि उसके मन में पति के दर्शनों की लालसा नहीं थी, या उसे उन पर अभिमान था। वह जानती थी कि उसके स्वामी उसे अवश्य ही दर्शन देंगे। उसका

सोचना ठीक निकला। बुद्ध सबको उपदेश देने के बाद यशोधरा के महल में आए। बुद्ध ने देखा कि वे यशोधरा का जिस अवस्था में छोड़ गए थे, वह एकबारगी बदल गई है। उसकी वेश-भूषा बिलकुल बदल गई है। घर में रहकर भी वह पूरी योगिनी बनी हुई है। यशोधरा सचमुच बुद्ध की योग्य सहधर्मिणी थी। इसीलिये इतने दिनों बाद वह साधारण स्त्रियों की तरह आँखों में आँसू भरकर रोने नहीं लगी। बुद्ध ने उसे भी अपने धर्म की बातें सुनानी शुरू कीं। उसने भी मन लगाकर सब कुछ सुना। उन्होंने यशोधरा के पूर्व जन्म का हाल सुनाकर उसे ढाढ़स बँधाया। वहाँ से बुद्ध "न्यग्रोधारा"-नामक बग़ीचे में चले आए।

कई दिन के बाद यशोधरा ने अपने पुत्र राहुक को बुद्ध के पास भेज दिया। उससे यह भी बतला दिया कि यही तुम्हारे पिता हैं। बुद्ध ने अपने बालक पुत्र को भी दीक्षा देकर अपने साथ रख लिया, वह नन्हा-सा बालक भी सिर मुड़ाए, पीला वस्त्र पहने, पिता के साथ घूमने लगा।

आठवाँ अध्याय

पिता का स्वर्गवास

कुछ दिन कपिलवास्तु में रहने के बाद वे श्रावस्ती-नगरी

में चले आए। यहाँ के भी बहुत-से लोगों ने उनका धर्म स्वीकार कर लिया। यहाँ के राजा ने इस धर्म के प्रचार के लिये बहुत-सा धन दिया और स्वयं बहुत-से दीन-दुखी और अनाथ मनुष्यों का नित्य पालन-पोषण करना शुरू किया। वहाँ से थोड़े दिन बाद बुद्ध फिर राजगृह चले आए और चौमासे-भर यहीं रहे। चौमासा वहीं बिताकर वे वैशाली में आए। यहाँ पहुँचने पर उन्हें अपने पिता के बीमार होने का समाचार मिला। उनके पिता की अवस्था उस समय ९१ साल की थी। इस बुढ़ापे की बीमारी का समाचार पाते ही बुद्ध समझ गए कि शायद इस बार बूढ़े राजा की जीवन-लीला समाप्त होनेवाली है। वे तुरंत ही कपिलवास्तु चले आए। उन्होंने घर छोड़ दिया था, पिता, पत्नी और पुत्र को छोड़ दिया था, पिता का दिया हुआ नाम तक छोड़ दिया था; पर पिता के प्रति पुत्र का जो कर्तव्य है, उसे नहीं भूले थे। बड़ों की बड़ी बातें हैं। उनके चरित्र सदा इसी तरह रहस्यमय होते हैं। उनकी बातों का समझना टेढ़ी खीर है।

कपिलवास्तु में आकर बुद्ध ने देखा कि पिता बहुत बीमार हैं। उस समय बूढ़े राजा बेहोश थे। पुत्र के आने का समाचार सुनते ही उन्हें होश हो आया—उन्होंने आँखें खोल दीं और धीरे-धीरे पुत्र के शरीर पर हाथ फेरा। आनंद से

उनके रोएँ खड़े हो गए—आँसुओं से आँखें भर आईं। धीरे-धीरे इसी प्रकार आनंद की अधिकता से पुत्र की देह पर हाथ फेरते-फेरते राजा ने सदा के लिये आँखें बंद कर लीं। उनकी आत्मा अमर-धाम को चली गई। पुत्र ने पिता का अंतिम संस्कार किया। जिस दिन के लिये मनुष्य पुत्र पाने की अभिलाषा करता है, उस दिन का काम बुद्ध ने कर दिया। शुद्धोदन का मनोरथ सफल हो गया।

राजा के मरने से कपिलवास्तु में शोक का समुद्र उमड़ पड़ा। बुद्ध ने सबको समझाना-बुझाना शुरू किया। एक-एक करके सभी लोगों ने उनके धर्म की शीतल छाया में आकर शरण ली। बूढ़ी रानी महाप्रजावती, बुद्ध की सौतेली मा, और उनकी पत्नी यशोधरा उनके साथ चलीं। वहाँ से चलकर वे लोग कुछ दिन कौशांबी में रहे। चौमासा वहीं बिताकर वे लोग राजगृह में आए। इस बार राजा बिंबिसार की पत्नी क्षेमा ने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ली। इसके पहले वे अपनी सौतेली मा और स्त्री को दीक्षा दे ही चुके थे, इसलिये उन्होंने एक भिक्षुणी-संघ बनाया और और भी बहुत-सी स्त्रियों को दीक्षा देकर उस संघ में शामिल कर लिया। इन स्त्रियों ने आगे चलकर बौद्ध-धर्म के प्रचार में बड़ी सहायता पहुँचाई।

बुद्धदेव ने ३५ वर्ष की अवस्था में बुद्धत्व प्राप्त किया था। इसके बाद वे ४५ वर्ष और जीवित रहे। इतने दिनों में उन्होंने लाखों आदमियों को अपना चेला बनाया। उनके चेलों में राजा, रानी, राजकुमार, धनी, निर्धन, पंडित, मूर्ख, सभी तरह के लोग थे। बड़े-बड़े लोगों को इस धर्म में आते देख, छोटे भी उनके पीछे हो लिए। कुछ लोग तो सच्चे ज्ञान की लालसा से इस धर्म में आए। और कुछ देखा-देखी इस नए धर्म को स्वीकार करने लगे। इस तरह सारे देश में बौद्ध-धर्म का डंका बज गया। जगह-जगह बौद्धों के विहार (मठ), आराम (बग़ीचे) और चैत्य (मंदिर) तैयार होने लगे। वैदिक धर्म माननेवालों की संख्या घटती चली गई। यज्ञों में पशुओं की बलि देने की प्रथा उठ-सी गई। उजले वस्त्र, पीले जनेऊ और लंबी चुटियावाले ब्राह्मणों की संख्या कम होने और बौद्ध-भिक्षुओं की संख्या बढ़ने लगी।

बुद्धदेव के इस नए धर्म को इस तरह फैलते देखकर ब्राह्मण उनके प्रबल विरोधी हो गए। कहते हैं, बहुत-से ब्राह्मणों ने एक बार उनके चाल-चलन की निंदा करने की बड़ी चेष्टा की। पर सत्य छिपाए नहीं छिपता, चाँद बादलों की ओट में नहीं छिपता। सूर्य पर धूल फेंककर कोई उसे मलिन नहीं कर

सकता। बुद्ध के निर्मल चरित्र की निंदा करके ब्राह्मण अपना स्वार्थ नहीं सिद्ध कर सके।

बुद्धदेव ने अपने जिस लड़कपन के साथी देवदत्त के हाथों से मरते हुए हंस की रक्षा की थी, वह उनका यह प्रताप देख-देखकर कुढ़ रहा था। उसने एक बार उनकी जान लेने की भी चेष्टा की; पर उसकी चेष्टा व्यर्थ हो गई। बुद्ध के शत्रु उनके बिरुद्ध जितनी ही चालें चलने लगे, उनका प्रताप उतना ही बढ़ता चला गया। वे अपने धर्म में लाकर संसार के जीवों को पाप-ताप से मुक्त करने लगे। थोड़े ही दिनों में उनका प्रताप चारो ओर फैल गया।

नवाँ अध्याय

प्रेम की धारा

बुद्ध भगवान् प्रेम के अवतार थे। छोटे-बड़े सभी जीवों पर उनका एक-सा प्रेम था। उनके धर्म की पहली बात अहिंसा थी। इसीलिये उनके शिष्य भी सब जीवों पर प्रेम रखने लगे। पहले ब्राह्मण आदि ऊँची जातियों के लोग शूद्रों पर बड़ा अत्याचार करते थे; पर बुद्ध ने अपने चेलों के लिये जो यह नियम बना दिया कि भीख माँगकर खाओ, इसलिये

एक प्रकार से सब लोग सबको अपने बराबर मानने लगे। बुद्धदेव कभी किसी पापी को भी अपनी घृणा का पात्र नहीं समझते थे। सब पर उनका समान प्रेम था। इसका प्रभाव उनके शिष्यों पर भी पड़े बिना न रहा। वे भी धनी-निर्धन, पंडित-मूर्ख, पापी-पुण्यात्मा, सबको प्रेम की दृष्टि से देखने लगे। बुद्धदेव का कहना था कि पाप से घृणा करो, पापी से नहीं। उसकी दशा पर दया करो। उसको पाप से छुड़ाने का उपाय करो। उसे शांति दो। इस विषय में कई कथाएँ प्रसिद्ध हैं। हम नीचे उन्हीं में से एकाध कहानियाँ पाठकों को सुनाते हैं।

राजा अजातशत्रु अपने पिता को मारकर सिंहासन पर बैठे थे। उन्होंने सोचा था कि राजसिंहासन पाकर मैं सुखी होऊँगा; परंतु पिता की हत्या करने से उनके चित्त को बड़ी ग्लानि हो रही थी, इसलिये वे कभी चैन नहीं पाते थे, उनके हृदय में दिन-रात आग सुलगती रहती थी। वे कितने पंडितों और साधुओं के पास गए, जिसमें उनके चित्त को शांति मिले; पर किसी ने उनके जी का दुःख नहीं मिटाया। वे किसी तरह शांति नहीं प्राप्त कर सके। एक दिन उनके मंत्री और वैद्य जीविक ने उनको भगवान् बुद्ध की शरण में जाने का उपदेश दिया। उन दिनों बुद्ध उसी स्थान में थे।

राजा जीविक को साथ लिए हुए बुद्ध के पास आए। उनके पास पहुँच, बड़े आदर से उन्हें प्रणाम कर, राजा उनके सामने बैठ रहे। धीरे-धीरे राजा ने अपना सारा हाल बुद्ध को सुना दिया। बुद्धदेव ने उन्हें अपना अमृत के समान उपदेश सुनाया। राजा ने खूब चित्त लगाकर उनका उपदेश सुना। अंत में हृदय भर आने से रोते हुए राजा ने कहा—"देव! मैंने बड़ा भारी पाप किया है, मुझ-सा पापी दूसरा कोई न होगा। मैंने अपने पिता की ही हत्या कर डाली है। इस पाप से मेरे कुल में कलंक लग गया; मेरा जीवन पाप से भर गया। मैंने राज्य के लोभ में पड़कर देवता के समान अपने पिता को मार डाला। अब इस पाप से मेरा कैसे छुटकारा होगा? हे दयामय, मैं आपकी शरण में हूँ। मुझे बचाइए। मेरी रक्षा कीजिए।"

अजातशत्रु को अपने पापों के लिये इस तरह पछतावा करते देख प्रेम के अवतार, क्षमा की मूर्ति, भगवान् बुद्धदेव ने कहा—"हे राजन्! आपके मन में वासना जगी, इसीलिये आप ऐसा पाप कर बैठे। इस समय आपकी समझ में आ रहा है कि आपने कितना बड़ा पाप कर डाला है। और इसीलिये आपने सबके सामने अपने पाप का भंडा-फोड़ कर दिया है। अब आप धर्म की शरण लें। पाप को छिपाना

या पाप करके दुखी न होना ही पाप को बढ़ाता है। आप-का हृदय पछतावे की आग से शुद्ध होता जा रहा है, इस-लिये आपको धर्म की छाया में विश्राम मिल सकता है। आप मेरा धर्म स्वीकार कर लें। अब आप पाप-पुण्य का भेद समझ गए हैं। इसलिये मेरा विश्वास है कि अब आपके हाथों कोई पाप नहीं होने पावेगा।"

उसी समय अजातशत्रु ने बौद्ध-धर्म ग्रहण कर लिया। भग-वान् बुद्धदेव की बात सच हुई। उस दिन से अजातशत्रु सचमुच अजातशत्रु हो गए। उनका कोई शत्रु नहीं रहा। वे सब पर प्रेम दिखलाने लगे। अजातशत्रु का पत्थर-सा कलेजा मोम-सा मुलायम हो गया। मानो पत्थर पर दूब निकल आई, ऊसर में हरा-हरा पौधा उग आया! फिर तो अजात-शत्रु ने सारे संसार के कल्याण के लिये ऐसे-ऐसे काम किए, प्रजा को सुखी करते हुए, उन्होंने उसे भी ऐसा धर्मात्मा बना दिया कि उनकी प्रशंसा करता हुआ इतिहास आज भी उनके नाम को अमर बनाए हुए है।

यह बुद्धदेव के प्रेम का ही प्रताप था, जो उन्होंने ऐसी अनहोनी को भी होनहार कर दिखाया। इसी तरह वे एक बार अपने शिष्यों के साथ वैशाली-नगर के बग़ीचे में टिके हुए थे। दल-के-दल लोग उनके दर्शनों के लिये आते

और उनके उपदेश सुनते थे। कोई धर्म की बातें सुनने आता, कोई अपना रोग दूर होने की आशा से आता, कोई धन की इच्छा से उनका आशीर्वाद लेने आता, कोई पुत्र की कामना से उनकी शरण लेता, कोई उनकी दया का भिखारी बनकर आता, कोई अपने उद्धार की लालसा से उनके पास पहुँचता। इस तरह हज़ारों आदमी नित्य उन्हें घेरे रहते थे। बुद्धदेव सबको अपने उपदेशों से संतुष्ट कर रहे थे। कितने ही धनी लोग उन्हें अपने यहाँ भोजन करने के लिये निमंत्रण देते और वे भी बड़े प्रेम से उनका निमंत्रण स्वीकार कर लेते थे।

एक दिन एक बड़ी ही सुंदरी स्त्री, मलिन वेश बनाए, उनके पास आई। उसके चेहरे से उदासी टपक रही थी। उसे देखकर सब लोग बड़े अचंभे में आ गए। कितने ही उसे पहले से पहचानते थे। उन लोगों ने उसे देखकर घृणा के साथ उसकी ओर से मुँह फेर लिया। वह वेश्या थी। वैशाली के लोग उसे अच्छी तरह पहचानते थे। उसका नाम आमूदाली था। इस समय उसे अपने पाप-भरे जीवन से बड़ी घृणा हो रही थी, इसी से वह शांति पाने के लिये बुद्धदेव की शरण लेने आई थी। उसका साहस इसीलिये और बढ़ गया था कि उस समय बुद्धदेव और उनके चेले उसी के बग़ीचे में टिके

हुए थे। यह बग़ीचा उसी का था। उसे बुद्धदेव के पास जाते देख कितने ही लोगों ने उसे रोकना चाहा; क्योंकि वह नीच वेश्या थी; पर वह किसी के रोके न रुकी; बुद्धदेव के पैरों पर आ गिरी और अपना दुखड़ा सुनाने लगी। बुद्धदेव ने उसे उपदेश देकर अभय दिया। कहते हैं कि उस वेश्या ने अपना वह बग़ीचा बौद्ध भिक्षुओं के ठहरने के लिये दे दिया। और आप उस धर्म की शरण में चली आई। उसने बुद्ध और उनके शिष्यों को अपने घर बुलाकर भोजन कराया। बुद्ध ने विना हिचकिचाए उसके घर अतिथि होकर जाना स्वीकार कर लिया था। उनके सामने वेश्या भी घृणा की पात्री नहीं थी। बीसवीं सदी के सबसे बड़े महात्मा गांधीजी भी इसी तरह सबको समान-दृष्टि से देखते हैं। और इसीलिये संसार में उनकी इतनी महिमा है। एक बार आसाम में वे भी कुछ वेश्याओं के बुलाने पर उनकी सभा में गए थे और उन्होंने उन्हें 'बहन' कहकर पुकारा था। इसीलिये कहा जाता है कि सच्चा महात्मा वही है, जिसके जी में दुविधा न हो, जो मनुष्य-मनुष्य में भेद-भाव नहीं रक्खे।

कहते हैं कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में एक बार उन्होंने 'चुंद' नाम के एक लुहार के घर अतिथि होना स्वीकार किया था। उस लुहार ने उनके और उनके शिष्यों के

लिये तरह-तरह के मांस पकवाए थे। भोजन के लिये आने पर जब उन्हें यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अपने आप थोड़ा-सा खा लिया; पर अपने शिष्यों को खाने से मना कर दिया। उन्होंने आप इसीलिये खाना स्वीकार किया कि जिसमें भक्त चुंद का जी न दुखे। इसी मांस को खाने से वे बीमार पड़ गए; पर उन्होंने अपने शिष्यों को इस बात के लिये पूरी चेतावनी दे दी कि वे चुंद को इसके लिये उलाहना न दें; क्योंकि यदि उसे यह मालूम होगा कि उसी के करते ही मैं बीमार पड़ा हूँ, तो उसे बड़ा दुःख होगा। उन्होंने कहा—"देखो, निरंजना-नदी के तीर पर सुजाता के दिए हुए उत्तम अन्न-व्यंजन मैंने जिस प्रेम से खाए थे, उसी प्रेम से मैंने चुंद का खिलाया हुआ खाना भी खाया है!"

देखो, भगवान् बुद्ध कितने बड़े क्षमाशील थे। उनको अपना दुःख स्वीकार था; पर दूसरे के जी को दुःख देना किसी तरह स्वीकार नहीं था। वे जितने दिन इस संसार में रहे, उतने दिन इसी प्रकार ऊँच-नीच, शत्रु-मित्र, पापी-पुण्यात्मा, पंडित-मूर्ख, सब पर सदा क्षमा, उदारता और प्रेम की दृष्टि रखते रहे और सबके साथ दया का व्यवहार करते थे। उनकी इसी अपार दया ने लाखों नर-नारियों को उनके

पैरों पर झुका दिया और वे भगवान् के अवतार समझे जाने लगे।

दसवाँ अध्याय

निर्वाण

बीमारी की ही हालत में वे चुंद के बग़ीचे से चलकर कुशीनगर में आए। वहाँ जाकर शाल-वन में रहने लगे। उनकी बीमारी छुटने के लक्षण नहीं दिखाई देते थे।

उस दिन वैशाख महीने की पूर्णिमा थी। चारो ओर चटकीली चाँदनी फैली हुई थी। धीरे-धीरे सुगंध-सनी वायु बह रही थी। भगवान् बुद्ध सोए हुए थे। रह-रहकर उनकी आँखें खुल जाती थीं। और वे अपने शिष्यों की ओर देखने लगते थे। भक्त लोग बड़ी घबराहट के साथ उनका छिन-छिन पर बदलता हुआ भाव देख रहे थे। जब वे आँखें मूँद लेते थे, तब उनके चेहरे पर एक अपूर्व ज्योति छिटक आती थी। मालूम होता था मानो सारे संसार की सुंदरता उनके मुख-मंडल में ही आकर इकट्ठी हो गई है। थोड़ी देर बाद जब वे आँखें खोलते थे, तब ऐसा मालूम होता था मानो वे आँखें सूर्य-चंद्रमा की तरह तेज से चमक रही हैं। उनसे

प्रेम और दया की तीखी किरणें निकली पड़ती थीं। भक्तों के चित्त उस समय चंचल हो रहे थे। वे समझ रहे थे कि भगवान् की लीला समाप्त होने में अब अधिक विलंब नहीं है।

धीरे-धीरे वह समय और भी पास आ गया। बुद्धदेव का जीवन समाप्त होने को आ गया। यह बात स्वयं बुद्धदेव भी समझ गए। इसीलिये उन्होंने अपने भक्तों को बुलाकर कहा—"प्यारे भिक्षुओ! इस संसार में हम लोगों का नदी-नाव-संयोग है। इसी तरह मिलकर हम सब एक दिन अलग भी हो जाते हैं। इस संसार में तुम लोग जितनी चीजें देख रहे हो, उन सभी का एक दिन नाश हो जायगा। तुम लोग सदा इस सत्य को स्मरण रखते हुए अपना कर्तव्य करते रहना, यही मेरा तुम लोगों को अंतिम उपदेश है।"

यही कहकर बुद्धदेव फिर ध्यान में लीन हो गए। यह सारा संसार नाशवान् है, सब कुछ मिथ्या है, ज्ञान की सीमा नहीं है, आकाश सर्वव्यापी और अनंत है, इन्हीं सब बातों की चिंता करते-करते बुद्धदेव की आत्मा देह को छोड़कर अनंत में जा मिली।

कपिलवास्तु के राजकुमार सिद्धार्थ, बुद्ध होकर, जगत् को मोक्ष का रास्ता बतलाकर, कुशीनगर के शाल-वन

में निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हो गए और सदा के लिये संसार में अपना कभी मलिन न होनेवाला यश छोड़ गए। इस समय भी सारे संसार के अधिकांश मनुष्य उनके धर्म को स्वीकार किए हुए हैं और भारत के हिंदू उनको भगवान् का नवाँ अवतार मानते हैं।